भ्रमरगीत: एक उपालम्भ काव्य

उपालम्भ का सामान्य अर्थ है — उलाहना। साहित्य में उपालंभ प्रतिकूल प्रिय को कही गई कटूक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होता है जिसमें प्रतिदान की अपेक्षा और प्रिय को अनुकूल बनाने की आकांक्षा ध्वनित होती है। भ्रमरगीत परम्परा में इसे एक विशिष्ट शैली के रूप में अपनाया गया है। उपालम्भ के मूल में यह भाव निहित है कि विरह जन्य पीड़ा के कारण गोपियों का कथन अभिधात्मक नहीं रह गया है, बल्कि उसमें वक्रता/बाँकपन आ गई है जिससे वाग्वैदग्ध्य उत्पन्न हुआ है। इसी वाग्विदग्धता, मार्मिकता और भावुकता ने सूर के भ्रमर-गीत को एक आदर्श उपालम्भ काव्य में ढाल दिया है। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही कहा है:- "श्रृंगार रस का ऐसा सुन्दर उपालंभ काव्य दूसरा नहीं है।"

सूर के भ्रमरगीत में उपालंभ सिर्फ रूढ़ि-पालन के लिए नहीं आया है। गोपियाँ उलाहने की मुद्रा में तब आती हैं, जब उन्हें लग जाता है कि उद्धव उनकी भावनाओं को समझे बिना ही उनके मन में निर्गुण ज्ञान को स्थापित कर देने पर आमादा हैं। गोपियाँ कृष्ण, उद्धव, प्रकृति, कुब्जा और नगरीय जीवन के प्रति उपालम्भ करती हैं।

सूर की गोपियाँ अपने उपालम्भ में कृष्ण की भ्रमर-वृत्ति को निशाना बनाती हैं। उन्हें दुःख है कि कृष्ण उनसे मिलने तो नहीं आ रहे हैं, ऊपर से ऊधव को भेजकर उन्हें योग संदेश सिखाना चाहते हैं। ताकि वे प्रेम क्षमता से वंचित हो जाएँ। वे नाराजगी से उद्धव से कहती हैं:-

"हरि हैं राजनीति पढ़ि आए।
इक अति चतुर हुते पहिले ही, अरु करि नेह दिखाए।
जानी बुद्धि बड़ी जुवतिन की, जोग संदेस पठाए।"

गोपियाँ उद्धव के प्रति भी तीखे व्यंग्य करती हैं। कृष्ण के मित्र होने के नाते गोपियों को उनसे आशा थी कि वे कृष्ण के प्रति उनके गहरे प्रेम की बात समझेंगे, किन्तु वे तो उल्टी गंगा बहाते हुए योग-ज्ञान की गठरी खोलने लगे। गोपियाँ अपना आपा खोकर उन पर बरस पड़ती हैं:-

"आयो घोष बड़ो व्यापारी।
लादि खेप गुन-ज्ञान-जोग की ब्रज में आन उतारी।"

× × ×

"जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।"

गोपियों को केवल कृष्ण और उद्धव ही नहीं खटक रहे हैं, कुब्जा का सौतपन भी उनकी आँखों की किरकिरी बनकर चुभ रहा है। इसलिए, वे आक्रामक मुद्रा में कहती हैं:-

"आपुन केलि करत कुब्जा संग, हमहिं सिखावत जोग।"

गोपियों को प्रकृति से भी शिकायत है, जो उनके वियोग में शामिल न होकर उल्टा आचरण कर रही है। वे

उन्हें 'निर्लज्ज' कहकर धिक्कारती हैं:-

"मधुबन तुम कत रहत हरे?
विरह वियोग स्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे?
तुम हौ निलज, लाज नहीं तुमको, फिरि सिर पुहुप धरे॥"

अन्त में, गोपियाँ उस नगरीय जीवन के प्रति भी उपालम्भ करती हैं जो सदैव उन्हें दुःख पहुँचाता है। सबसे पहले अक्रूर मथुरा से आए थे और कृष्ण को लेकर चले गए। कृष्ण मथुरा जाकर उन्हें भूल गए। अब उद्धव भी मथुरा से ही आए हैं जो उन्हें कृष्ण-प्रेम से भी वंचित कर योग की ओर धकेलना चाहते हैं। इसलिए गोपियाँ शिकायत करती हैं:-

"वह मथुरा काजर की कोठरी, जे आवहिं ते कारे।
तुम कारे सुफलक सुत कारे, कारे मधुप भँवारे॥"

सूर के भ्रमरगीत में माँ यशोदा भी नन्द बाबा के प्रति उपालम्भ करती हैं, जब वे मथुरा से अकेले लौटते हैं, कृष्ण को वहीं छोड़ देते हैं। इस पर यशोदा का मातृ-हृदय दुःख से फट पड़ता है:-

नन्द! ब्रज लीजै ठोंकि बजाय।
देहु विदा मिलि जाहि मधुपुरी जहँ गोकुल के राय॥"

सूर के उपालम्भ काव्य का मूल्यांकन करते हुए यह देखना भी जरूरी है कि हिन्दी के अन्य कवियों के यहाँ उपालम्भ की क्या स्थिति है? वस्तुतः, अन्य कवियों के यहाँ कहीं-कहीं उपालम्भ की झलक मिल जाए, किन्तु न तो वह बहुत स्पष्ट है और न ही व्यापक। कबीर के यहाँ भी हम कुछेक स्थलों पर उपालंभ को महसूस कर सकते हैं, जैसे जहाँ वे कहते हैं कि हे राम! मरने के बाद दर्शन दोगे, तो वह किस काम का है;——

" मूवाँ पीछे देहुगे, सो दरसन किहि काम।"

जायसी के यहाँ भी एकाध स्थान को छोड़कर उपालम्भ के चित्र प्रायः नहीं मिलते हैं। जब रत्नसेन सिंहल द्वीप से लौटकर चितौड़ में नागमती के पास आता है, तब नागमती उसे उलाहना देती है:-

" का हँसौ तुम मोसौं, किएउ और सो नेह।
तुम मुख चमकै बीजुरी, मोहि मुख बरसै मेह॥"

वस्तुतः, उपालम्भ के क्षेत्र में जो अद्भुत सफलता सूर को मिली है, शेष कवि उसके आस-पास भी नहीं पहुँच सके हैं। विस्तार और गहराई- दोनों दृष्टियों से सूर का उपालंभ बेजोड़ है।